International Journal of Applied Research 2017; 3(1): 1009-1011

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(1): 1009-1011
www.allresearchjournal.com
Received: 26-11-2016
Accepted: 28-12-2016

डॉ. अनिल गुप्ता
सह–आचार्य, (चित्रकला),
राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट,
जयपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अनिल गुप्ता
सह–आचार्य, (चित्रकला),
राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट,
जयपुर, राजस्थान, भारत

प्रतिमा : एक विश्लेषण

डॉ. अनिल गुप्ता

सारांशः
भारत में प्रतिमा निर्माण की परम्परा अति प्राचीन है। सैन्धव–सभ्यता के अवशेषों में अनेक मिट्टी की बनी हुई नारी मूर्तियां प्राप्त हुई है, जो सामान्य दुनियांबी मूर्तियों से कुछ भिन्न है। इन मूर्तियों से ऐसा प्रतीत होता है कि इसके द्वारा किसी देवी का अंकन अभिष्ट था। सैन्धव सभ्यता के पश्चात मौर्य युग में कला की अभूतपूर्व उन्नति हुई इस काल में भी हमें प्रतिमा शिल्प के श्रेष्ठ उदाहरण मिलते हैं। गुप्तकाल में चुनार पत्थर पर सारनाथ के कलाकारों ने बुद्ध की अनेक प्रतिमाओं का निर्माण किया था।
भारत में मंदिर निर्माण की परम्परा का प्रारूप बौद्ध स्तूपों और चैत्यों में पाया जा सकता है। गुप्तकाल में इन्हीं से प्रभावित होकर हिन्दू मंदिरों का विकास हुआ था।

मूल शब्द : संकल्पना, अव्यक्त, अदृष्ट, अलक्ष्य, पंतजलि, अर्च्चा।

प्रस्तावनाः
''परब्रह्म यदपि शब्द, स्पर्श, रस, रूप तथा गन्ध इन सबसे शून्य है फिर भी पुराणों में इसके द्विविध रूप का वर्णन हुआ है। उस सत्ता के दो रूप प्रकृति तथा विकृति है। अव्यक्त, अदृष्ट एवं अलक्ष्य रूप प्रकृति है। इसी को निर्गुण रूप भी कहते हैं।'' ''दूसरा रूप विकृति'' है। यह साकार रूप है। इस रूप की पूजा अर्चना द्वारा आराधना की जाती है। साकार रूप आधारपूर्ण होने के कारण सरलता से पूजा जा सकता है। यही ब्रह्म का सगुण रूप है।
ब्रह्म के प्रकृति अर्थात निर्गुण का कोई आधार नहीं होता। इस रूप की पूजा सम्भव है। अतः भगवान ने स्वेच्छा से अपने सुन्दर रूप को प्रकट किया। उसे देखकर देवगण हर्षित हुए और प्रसन्न होकर उसी रूप की पूजा करने लगे।

''अतो भगवतानेन स्वेच्छया यत्प्रदर्शितम्।
प्रादुर्भावेष्वथाकारं तदर्चन्ति दिवौकसः।।''

साकार सगुण रूप आधारयुक्त होता है। उस रूप की यथा विधि पूजा की जा सकती है। अतः उसी की पूजा का विधान है।
ईश्वर के साकार रूप ने आगे चलकर विभिन्न प्रतिमाओं का रूप धारण कर लिया। क्रत, त्रेता तथा द्वापर युग में व्यक्ति भगवान के स्वयं ही दर्शन कर सकने में समर्थ थे, किन्तु कलयुग में ईश्वर की आराधना प्रतिमाओं द्वारा ही सम्भव है। अतः पुराणों में वर्णित ईश्वर के साकार रूप को कलाकारों ने विभिन्न कलाओं के माध्यम से सांसारिक भूमिका पर लाने का प्रयास किया है।
भारत में देव पूजा का प्रारम्भ काल अविज्ञात है। देव प्रतिमाओं या अर्चाओं का निर्माण कब से प्रारम्भ हुआ इस विषय में भी निश्चित रूप से कुछ कह सकना कठिन है फिर भी इतना तो निश्चित है कि छठी शताब्दी ईसा पूर्व में यहाँ देवों की प्रतिमाएं ढ़ाली जाती थी। मौर्य राजाओं के समय में तो राज्य स्तर पर देव प्रतिमाओं का निर्माण एवं विक्रय भी प्रचलित हो गया था। ब्राह्मणों और कल्प सूत्रों के विवाद ग्रस्त स्थलों को छोड़ भी दे तो भी पाणिनी और उनके भाष्यकार पंतजलि में जो संदर्भ देव प्रतिमाओं के संबंध में मिलते हैं, वे प्रतिमा – पूजन की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं।
प्राचीन भारत में देव मंदिर प्रासाद कहलाते थे। इनमें से किसी–किसी में कई देवताओं की प्रतिमाएं एक साथ प्रतिष्ठित की जाती थी। उदाहरणार्थ इन्द्र, विष्णु और कुबेर तथा बलराम और श्रीकृष्ण की प्रतिमाएं के त्रिक और युग्म प्रर्याप्त लोकप्रिय थे। भारत के प्राचीन मंदिरों अथवा खुदाई से प्राप्त अवशेषों में जो देव प्रतिमाएं प्राप्त हुई है वे प्रायः गुप्त युग या उसके बाद की है।
प्रतिमा का शाब्दिक अर्थ प्रतिरूप होता है। प्रतिरूप से तात्पर्य समान आकृति से है। पाणिनी ने अपने सूत्र 'इवेप्रतिकृतौ' (5,3,96) में समरूप आकृति के लिए प्रतिकृति शब्द का प्रयोग किया है। ''प्राचीन भारत में प्रतिमा शब्द का प्रयोग वैदिक युग से ही चला आ रहा है।

ऋग्वेद में यज्ञ के स्वरूप के सम्बन्ध में प्रतिमा शब्द प्रयुक्त हुआ है। ''प्रतिमा के लिए अर्च्चा शब्द का भी प्रयोग ऋग्वेद में मिलता है।'' प्रतजंलि ने भी प्रतिमा के लिए अर्च्चा शब्द का प्रयोग किया है। प्रतिमा शब्द का प्रयोग वस्तुतः उन्हीं मूर्तियों के लिए किया जाता है, जो किसी न किसी धर्म अथवा दर्शन से सम्बन्धित होती हैं। मूर्ति और प्रतिमा में जो मौलिक अंतर है, वह यही है कि मूर्ति सामान्य दुनियाँवी मनुष्यों या प्राणियों की आकृति होती है किन्तु प्रतिमा शब्द का प्रयोग देवताओं, देवियों, महात्माओं या स्वर्गवासी पूर्वजों आदि की आकृतियों के लिए ही किया जाता है। मूर्ति निर्माण और प्रतिमा निर्माण की क्रिया में कलाकार की शिल्पगत अभिव्यक्ति दो रूपों में ही व्यक्त होती है। प्रतिमा–निर्माण के लिए निश्चित नियमों और लक्षणों का विधान होता है, फलतः कलाकार प्रतिमा निर्माण में पूर्ण स्वतंत्र नहीं होता है साथ ही उसके आंतरिक कला–बोध का अभिव्यक्तिकरण भी उसमें पूर्ण–रूपेण संभव नहीं है। धर्म अथवा दर्शन से सम्बन्धित होने के कारण प्रतिमा का स्वरूप प्रतिकात्मक होता है।

प्रतिमा निर्माण के लिए अनेक प्रकार की वस्तुओं का प्रयोग होता रहा है। रामायण में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि जब सीता वाल्मीकी के आश्रम में रहती थी उस समय राम ने अश्वमेघ यज्ञ किया। सीता के उपस्थित न रहने के कारण राम ने उनकी सोने की प्रतिमा बनवाकर अपने समीप स्थापित करवायी। महाभारत में भीम की लोहे की प्रतिमा का प्रसंग प्राप्त होता है। जब धृतराष्ट्र ने अपने वक्ष–स्थल से भीम की प्रतिमा को दबाकर चूर–चूर कर दिया तब विलाप करते हुए धृतराष्ट्र को कृष्ण ने समझाते हुए कहा कि आपने भीम को न मारकर उनकी लोहे की प्रतिमा नष्ट की है।

''मा शुचो धृतराष्ट्र त्वं नैष भीमस्त्वया हतः।
आयसीप्रतिमा ह्यौषा त्वया राजन्निपातिता।।

पुराणों में प्रतिमा के विषय में अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं कृष्ण अक्रूर जी से कहते हैं कि मिट्टी और शिला की बनी हुई प्रतिमाएँ अधिक दिन उपासना करने पर मनुष्य को प्रसन्न करती है –

''नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवामुच्छिलामयाः।''

इसी प्रकार जब कृष्ण उद्धव को क्रिया–योग एवं कर्मकाण्ड का उपदेश देते हैं, तब वे अपनी प्रतिमाओं के निर्माण के विषय में भी बतलाते हैं कि प्रतिमाएँ मिट्टी, काष्ठ, पत्थर, धातु, चंदन, बालुका तथा मणि द्वारा निर्मित होती है–

''शैली दारूमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता।''

इन आठ प्रकार की प्रतिमाओं द्वारा भगवान् की उपासना की जा सकती है। इसके साथ ही साथ स्वर्ण, ताम्र, चाँदी और धातुओं द्वारा भी प्रतिमाएँ बनाने का उल्लेख होता है। धातुओं में गड्डा बनाकर तथा पत्थर को तराश कर प्रतिमा निर्माण होता है। मत्स्य पुराण में शिला, स्वर्ण, चाँदी, ताम्र आदि धातुओं से प्रतिमा बनाने का आदेश दिया गया है।

गोपाल भट्ट ने सभी उत्कीर्ण प्रतिमाओं को दो भागों में विभक्त किया है। प्रथम भाग में निम्न प्रकार की प्रतिमाएँ है –

1. **चित्रजा** – दीवालों तथा कपड़े पर चित्रित की जाने वाली।
2. **लेप्यजा** – मिट्टी की बनी हुई।
3. **पाकजा** – धातु की बनी हुई।
4. **शस्त्रोत्कीर्णा** – धातु के बने शास्त्रों से तराशी हुई।

दूसरे विभाजन के अन्तर्गत सात प्रकार की प्रतिमाओं का उल्लेख हुआ है –

1. मृण्मयी – मिट्टी की बनी हुई।
2. दारूजा – लकड़ी की बनी हुई।
3. लौहजा – लौहा अथवा अन्य धातु की बनी हुई।
4. रत्नजा – रत्न तथा अन्य मणियों की बनी हुई।
5. शैलजा – पत्थर की बनी हुई।
6. गन्धजा – चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों की बनी हुई।
7. कौसुमी – पुष्पों की बनी हुई।

''राव महोदय ने लकड़ी, पत्थर, मिट्टी, बहुमूल्य मणि तथा दो या दो से अधिक मिश्रित धातुओं को प्रतिमा के द्रव्य के रूप में स्वीकार किया है।

1. मिट्टी – प्रतिमा बनाने में मिट्टी का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल से लेकर आज तक होता चला आ रहा है। प्राचीन कलाकारों के सम्प्रदाय में कुम्भकार, स्वर्णकार, लोहार आदि प्रसिद्ध जातियाँ हैं। ये विश्वकर्मा के वंशज कहे जाते हैं। कुम्भकार तो अब भी मिट्टी की प्रतिमाएँ बनाने के लिए प्रसिद्ध हैं। आज भी विभिन्न प्रकार की सुन्दर मृणमयी प्रतिमाओं के साथ दीपावली के अवसर पर गणेश, लक्ष्मी की प्रतिमाओं की उपासना होती है।

मिट्टी की बनी हुई प्रतिमाएं दो प्रकार की हैं –

1. अपक्व प्रतिमाएं और
2. पक्व प्रतिमाएं

लकड़ी –

कला में लकड़ी का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से होता आ रहा है। ऋग्वेद में ऐसा प्रसंग आता है कि लकड़ी ही ऐसी वस्तु थी जिसकी सहायता से विश्वकर्मा ने सर्वप्रथम इस सृष्टि की रचना की।

''किम स्विद् वनं क उस वृक्ष
आस यतो द्यावा पृथिवी।''

अर्थात किस वन की कौन सी लकड़ी से द्यावा पृथिवी बनायी जाये। यह सरलता से प्राप्त होने के साथ ही बड़ी महत्वपूर्ण है। नन्दन, स्पन्दन शाल, शिंशुप, खदिर, धव, किंशुक, हरिद्र, अर्जुन, कदम्ब आदि वृक्षों को इस उद्देश्य के लिए उपयुक्त बताया है। रक्तवर्ण के वृक्ष राजाओं के लिए, श्वेत वर्ण वाले वृक्ष ब्राह्मणों के लिए, पीतवर्ण वाले वैश्यों के लिए तथा कृष्ण वर्ण वाले शुद्रों के लिए उपयुक्त है।

ढाका म्युजियम में लकड़ी की बनी हुई अनेक प्रतिमाएं प्राप्त होती है जो मुगल काल के पूर्व की है। एक अन्य विष्णु प्रतिमा जो की लकड़ी की है किन्तु पत्थर की प्रतीत होती है। यहीं पर विष्णु की एक खड़ी प्रतिमा है। ढ़ाका के पास अरियल नामक स्थान पर एक लकड़ी का स्तम्भ प्राप्त हुआ है, इस पर बड़ी सुन्दर नक्काशी बनी है। स्तम्भ अब भी अरियल म्यूजियम में है।

पत्थर :–

पत्थर अथवा शिला का प्रयोग प्रतिमा बनाने के लिए न केवल भारत में अपितु सम्पूर्ण विश्व में अधिकता से होता रहा है। यूनानी कला में मुख्यतः पत्थर का ही प्रयोग हुआ है।

विष्णुधर्मोत्तर में दारू के साथ–साथ शिला परीक्षण पर भी एक अध्याय प्राप्त होता है। उसमें चार वर्णों के लिए, चार वर्ण की शिलाओं का उल्लेख है। शुक्ल वर्ण की शिला ब्राह्मणों के लिए, रक्तवर्ण की क्षत्रियों के लिए, पीतवर्ण की वैश्यों के लिए तथा कृष्णवर्ण की शिला शुद्रों के लिए अत्यधिक उत्तम मानी गयी है।

''शुक्ला शस्त द्विजातीनां क्षत्रियाणां च लोहिता
विशां पीता हिता कृष्णा शुद्राणां च हित्यप्रदा।''

शुक्ल वर्ण की शिला सात्विकी, रक्ता तथा पीतवर्ण की राजसी और कृष्ण वर्ण की तामसी कही गयी है। किसी किसी पत्थर में लोहे के समान, काँस्य के समान चमकीले तथा स्वर्ण के समान सुनहले अंश होते हैं। ये तीनों प्रकार के अंश जिस शिला में विद्यमान रहते हैं वह वर्जित शिला है।

प्रशस्त शिला –

विष्णुधर्मोत्तर श्वेतवर्ण की, कमल के समान वर्ण की, कुसम वर्ण की, काली मिर्च के समान काली, कपिलत वर्ण की, मूंग के वर्ण की, कबूतर के वर्ण की तथा भौंरे के समान काली इन आठों प्रकार की शिलाओं को उत्तम शिलाएं बतलाया है।

''श्वेतश्च पदममवर्णश्च कुसुमोषरसन्निभम्
पालुरो मृग्रगवर्णश्च कापोतो भृगंसन्भिः।।
ज्ञेयाः प्रशस्ताः पाषाणाः अष्टावेते न संशयः।''

इसके अतिरिक्त बिल्कुल काली और हीरे के समान श्वेत शिला धन–सम्पत्ति, पुत्र–पौत्रादि वृद्धि करने वाली है। श्वेतवर्ण की शिला में यदि कृष्ण वर्ण के अथवा रत्नवर्ण के चिन्ह हों तो वह दोषयुक्त शिला है। श्वेतवर्ण की सभी शिलाओं में हीरे के समान वर्ण वाली शिला बहुत अच्छी मानी गयी हैं।

धातु :–

धातु की प्रतिमा के लिए श्रीमद्भागवत में केवल ''लोही'' शब्द का प्रयोग हुआ है। किन्तु यंत्र–तंत्र व देवो के रूप के सम्बन्ध में सोना, चाँदी आदि का भी प्रसंग प्राप्त होता है। शिल्परत्न में आठ प्रकार की धातुओं का वर्णन हुआ है जिनसे प्रतिमाएं बन सकती है।

''सौवर्ण राजसं ताम्रं पैतलं कांस्यमायसम्। सैसकं प्रापुपुषं चेति लौहं बिम्बं तथाष्टधा।''

प्रतिमा निर्माण के लिए सोने और चाँदी का प्रयोग अतीत काल से होता रहा है किन्तु इनकी बनी प्रतिमाएं बहुत कम है इसके अतिरिक्त अष्टधातु नाम की विशिष्ट धातु का भी प्रयोग प्रतिमाकरण में होता है। टी. ब्लोच महोदय ने लौरिया नन्दगढ़ के समीप के श्मशान टीले की खुदाई के समय अन्य वस्तुओं के साथ एक छोटा स्वर्णपत्र भी प्राप्त किया जिस पर एक स्त्री की प्रतिमा बनी है।

मणि :–

श्रीमद्भागवत् द्वारा कथित मणिमयी प्रतिमाएं बहुमूल्य मणियों से बनती थी। शिल्परत्न ने आठ प्रकार की मणियों का उल्लेख किया है जिनसे प्रतिमाकरण होता था–

''स्फटिकं पदमरणं च वज्र नीलं। हिरण्मयम्। वैडूर्य विदुमं पुष्यं रत्नबिम्ब तथाष्टधा।''

राव महोदय ने इन्हीं मणियों का उल्लेख करते हुए स्फटिक दो प्रकार का बतलाया है–

1. सूर्यकान्त
2. चन्द्रक्रान्त

संदर्भ ग्रंथ :–

1. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, गायकवाड़ ऑरियण्टल सीरिज, नं. 130, बड़ौदा, 1958.
2. ऋग्वेद 10, 130, 3 संस्कृति संस्थान, बरेली, द्वितीय संख्या 1962.
3. इंदुमति मिश्र – प्रतिमा विज्ञान, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1972.
4. श्रीमद् भागवत 10/48/31 प्रथम खण्ड, गीता प्रेस, गोरखपुर।
5. Dr. Agarwal VS. Indian Art, Varanasi, 1965.
6. शिल्परत्न–1/38, दिल्ली, 1960.